Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 2 | ISSN : 2582-0095

प्राचीन भारतीय जन–समितियों का राज्य–शासन में योगदान

डॉ0 विजय कुमार
विभागाध्यक्ष एवं असि0 प्रोफेसर,
प्राचीन इतिहास विभाग,
इ0 सि0 स0 सं0 से0 राजकीय महाविद्यालय,
पचवस, बस्ती, उत्तर प्रदेश,भारत।

Article Info

Volume 4 Issue 2

Page Number : 123-128

Publication Issue :

March-April-2021

Article History

Accepted : 02 March 2021

Published : 15 March 2021

शोध सरांश – जन सभाएं तथा संघटित संस्थायें राजनीतिक संगठन के कार्यात्मक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। जनसमितियॉ राज्यहीन समुदायों एवं जनजातीय समुदायों में आरम्भ से ही आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में भूमिका निभाती रही है। सभा और समिति को राजा द्वारा संरक्षण प्रदान करने की बात कही गयी है। परवर्ती काल में सभा का स्वरूप बदल गया और वह राजा की परामर्शदात्री परिषद बनकर रह गयी। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा वही हो सकता है जिसे अन्य लोग स्वीकार करें। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि परवर्ती काल में, समिति में साधारण लोगों का प्रवेश लगभग समाप्त हो गया होगा। पूग एक स्थान में रहने वाले विभिन्न व्यापारियों, शिल्पियों तथा व्यावसायियों की संस्था होती थी। पूग शब्द का प्रयोग समूहवाची रूप में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में पूग शब्द का प्रयोग 'हस्तिपूग' व शत्रुपूग आदि रूप में हुआ है। वीरमित्रोदय सेना के हस्त्यारोही और अश्वारोही जैसे सैन्य अंगों के लिए पूग शब्द का प्रयोग करता है। कौटिल्य ने कृषि, व्यापार और सैन्य कार्य करने वालों के सामूहिक संस्था को श्रेणी कहा है। सामान्य रूप से कौटिल्य ने इस शब्द का आशय शिल्पकारों की संस्था से भी लगाया है। मेघतिथि वेदज्ञ ब्राह्मण, वणिक, शिल्पकार आदि के संघ को 'श्रेणी' कहते हैं।

कूट शब्द – सभा, विशः , ऋचा, समिति, पूग, विद्थ, पौर–जनपद, नैगम, जनपद, रज्जुक।

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

प्राचीन भारत में राज्य संस्था का मूल जन समितियॉ थी। राज्योत्पत्ति का प्राचीनतम आख्यान ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित है। डा0 के0पी0 जायसवाल तथा डा0 पी0वी0 काणे क्रमशः ऋग्वेद और अथर्ववेद में राजा के निर्वाचन की बात स्वीकारते हैं। एम0जी0 स्मिथ का मानना है कि जन सभाएं तथा संघटित संस्थायें राजनीतिक संगठन के कार्यात्मक स्वरूप का प्रतिनिधित्व करती हैं। जनसमितियॉ राज्यहीन समुदायों एवं जनजातीय समुदायों में आरम्भ से ही आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्रों में भूमिका निभाती रही है। प्राचीन भारत में जन संगठन को उनके कार्यक्षेत्र, आकार एवं उद्देश्य के आधार पर विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया, यथा– सभा, समिति, पूग, विद्थ इत्यादि।

वैदिक काल में ग्राम या स्थानीय संस्था को सभा कहा गया। यह एक सार्वजनिक संस्था थी, जिसमें चुने हुए प्रतिनिधि थे परन्तु समिति से अधिक राजनीतिक संस्था थी। सभा में विशिष्ट लोगों को ही भाग लेने का अवसर मिलता था। सम्पूर्ण जनों का उत्तरदायित्व सभा पर ही था। इस प्रकार सभा निरन्तर शक्तिशाली होती जा रही थी। सभा के सदस्यों के लिए विशेषण का प्रयोग किया गया है तथा इसके सभासद को अर्थववेद में पिता कहकर सम्बोधित किया गया है। इससे पता चलता है कि सभा, लोगों की पुत्रवत रक्षा करती थी। सभा और समिति को राजा द्वारा संरक्षण प्रदान करने की बात कही गयी है। परवर्ती काल में सभा का स्वरूप बदल गया और वह राजा की परामर्शदात्री परिषद बनकर रह गयी। हेमचन्द्र के वाचरूपव्यम् तथा अमरकोश में सभा का अर्थ सभा भवन में एकत्र जन समूह को कहा। स्पष्ट है कि पॉचवी शताब्दी तथा उसके बाद भी इसका अस्तित्व बरकरार रहा। सभा का प्रधान कार्य न्याय करना था। जायसवाल महोदय इसे राष्ट्रीय न्यायालय की संज्ञा देते हैं। सभा को पाप, अपराध या अभियोग के कलंक को मिटाने वाली संस्था कहा गया है।

समिति सभा की अपेक्षा अधिक विकसित जन संस्था थी। वैदिक काल में जब यह साधारण (विशः) लोगों को राष्ट्रीय सभा थी तब उसमें सभी लोग उपस्थित रहते थे और उनका प्रमुख कार्य राजा का चुनाव था। ए0 एस0 अल्तेकर के अनुसार समिति एक राजनीतिक संस्था थी और इसका स्वरूप केन्द्रीय शासन की व्यवस्थापिका सभा के समान था। समिति और राजा का घनिष्ठ सम्बन्ध था। समिति में राजा बड़ी संख्या में एकत्र होते थे। राजाओं की उपस्थिति एक ओर वैदिक समाज में कबीलाई परम्परा का आभास देती है तो, दूसरी तरफ, वह विकसित समाज के तत्वों को समाविष्ट किए हुए है।

सर्वप्रथम समिति का उल्लेख ऋग्वेद के प्रथम एवं दसवें मंडल में हुआ। इसमें समुदाय के साधरण व्यक्तियों के साथ–साथ विशिष्ट लोग भी भाग लेते थे। समिति में उपस्थित होना राजा का कर्त्तव्य था। 'ऋग्वेद' की वाजसनेयी संहिता में है कि विप्र एक वैद्य है जिसके पास औषधि उसी प्रकार से एकत्र

होती है जिस प्रकार राजा लोग समिति में जाते है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार राजा वही हो सकता है जिसे अन्य लोग स्वीकार करें। इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि परवर्ती काल में, समिति में साधारण लोगों का प्रवेश लगभग समाप्त हो गया होगा। जायसवाल महोदय के कथनानुसार परवर्ती काल में समिति के संगठन का मुख्य आधार ग्राम थे। तैत्तिरीय संहिता में भी है कि परस्पर निर्णय करने के लिए उत्सुक ग्राम के सब लोग मिलकर एकत्र होते थे। सायण की टीका के अनुसार समिति गांव वालों की अथवा ग्राम प्रमुखों की गोष्ठी थी।

यू0 एन0 घोषाल महोदय ने समिति का एक कार्य सार्वजनिक सम्पत्ति (धन) का विवरण बताया है। अति प्राचीन समय में समिति ''जन'' के लोगों के मध्य भूमि वितरण करती थी तथा कालान्तर में यह किसी भूमि के व्यक्तिगत स्वामित्व के विवादों को भी सुलझाती थी क्योंकि इस तथ्य की वास्तविक जानकारी समिति के पास ही होती थी। समिति में राजनीतिक विषयों पर भी वाद–विवाद होते थे। ऋग्वेद की एक ऋचा के आधार पर अल्तेकर महोदय ने समिति की सामाजिक अथवा विद्वान मण्डली के रूप में देखा है। समिति के कुछ सैनिक उत्तरदायित्व भी होते थे क्योंकि टीकाकारों ने इस शब्द का आशय युद्ध या व्यूह लगाया है।

विदथ वैदिक काल की एक जन सभा थी, परन्तु इसके कार्य स्पष्ट नही है। जायसवाल महोदय ने विदथ को सर्वसाधारण की सबसे पहली और मूल संस्था माना है, जिससे सभा, समिति और सेना की उत्पत्ति हुई। आर0 एस0 शर्मा भी विदथ को सर्वप्राचीन जन सभा मानते हैं, जिसमें पुरुष और स्त्रियाँ दोनों सम्मिलित होकर आर्थिक, सामरिक, धार्मिक और सामाजिक सभी प्रकार के कार्यों का सम्पादन करते थे। परन्तु कुछ विद्वान विदथ को स्थानीय धार्मिक जमवाड़ा मानते हैं। विदथ का सम्बन्ध नागरिक, सैनिक और धार्मिक तीनों प्रकार के कार्यों के साथ दिखायी देता है। सभा के विपरीत विदथ में स्त्रियों के भाग लेने का उल्लेख प्राप्त होता है। ''विदथ'' नामक जन संस्था वैदिक काल तक ही सीमित रही तथा सम्भवतः इसमें युद्ध में लूटे माल का बँटवारा होता था।

सामान्यतः पौर–जनपद का तात्पर्य किसी राज्य के नगर और ग्राम की जनसंख्या से है, परन्तु नपुंसकलिंग एकवचन में इसका अर्थ राजधानी एवं देश के नागरिकों की ''प्रतिनिधि संस्था'' है। जनपद संस्था राजनीतिक विषयों से संबद्ध थी समय तक यह पूर्ण विकसित से सम्बद्ध थी और पाणिनि के समय तक यह पूर्ण विकसित हो चुकी थी। डी0 डी0 कोसाम्बी इसे धनी लोगों का स्वायत्त समूह मानते हैं, जिसमें जनता की शक्ति तो थी परन्तु इसका संचालन जनमत द्वारा न होकर गुप्तचरों के माध्यम से होता था। ऋग्वेद में पौर शब्द तीन बार परन्तु जनपद शब्द एक बार भी नहीं प्रयोग हुआ है। शतपथ ब्राह्मण में

''जनपद'' का अर्थ ''प्रजाजन'' बताया गया है। गौतम धर्मसूत्र में पौर शब्द पुर वासियों के लिए प्रयुक्त हुआ है। जातक ग्रन्थों में 'नैगम' व 'जनपद' शब्द का उल्लेख है जो क्रमशः नगर के व्यापारियों का संगठन व जनपद निवासी हेतु प्रयुक्त हुआ हैं। रामायण, महाभारत एवं दिव्यावदान में पौर एवं जानपद का स्पष्ट उल्लेख है। सम्राट अशोक शिलालेख में रज्जुकों को जनपदों पर दया करने का आदेश देता है। खारवेल के हाथीगुफा अभिलेख में पौर जनपद का उल्लेख प्रभावशाली निकाय के रूप में किया गया है। अशोक के धर्म का विचार विमर्श जनपदों व जनों से भी किया था।

''पूग'' शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम कौषीतकि ब्राह्मण में हुआ है, जिसमें रूद्र को पूग कहा गया है। विनय पिटक में सहकारी ग्राम अथवा नगर संघ के अर्थ में पूग शब्द का प्रयोग हुआ है। पूगो का ग्रामीण से घनिष्ठ सम्बन्ध था। पूग ग्रामीण, ग्राम ग्रामीण से भिन्न था तथा सम्भव है कि यह ग्रामों के समूह का ग्रामीण होता था। पाणिनि में आये हुए पूग शब्द की काशिका वृत्ति ने व्याख्या कर इसे विशेष संघ माना है। इस संघ में विभिन्न जातियों के विभिन्न वृत्तियों से अपनी जीविका का निर्वाह करने वाले लोग किसी ऐसे उद्देश्य से संगठित होते थे जिसकी गणना अर्थ या काम के अन्तर्गत हो सकती थी। मिताक्षरा ने भी याज्ञवल्क्य स्मृति में प्रयुक्त पूग शब्द की यही व्याख्या की है परन्तु काशिका के विपरीत मिताक्षरा ने पूग नामक समूह में संगठित लोगों को एक ही स्थान का निवासी बताया है। पूग एक स्थान में रहने वाले विभिन्न व्यापारियों, शिल्पियों तथा व्यावसायियों की संस्था होती थी। पूग शब्द का प्रयोग समूहवाची रूप में प्रयुक्त हुआ है। महाभारत में पूग शब्द का प्रयोग 'हस्तिपूग' व शत्रुपूग आदि रूप में हुआ है। वीरमित्रोदय सेना के हस्त्यारोही और अश्वारोही जैसे सैन्य अंगों के लिए पूग शब्द का प्रयोग करता है। जहाँ कात्यायन तथा विवादरत्नाकर आदि ने वणिक समूहों को पूग की संज्ञा दी है, वही वृहस्पति ने गण और पाषण्डों के समूह को पूग कहकर, पूग, व्रात व श्रेणी समूह को एक ही वर्ग कहा है। इस प्रकार पूग शब्द का प्रयोग सैनिक गणितीय, धार्मिक और सामाजिक तथा आर्थिक सन्दर्भों में हुआ तथा इस शब्द का प्रचलन द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 से बारहवीं शताब्दी तक प्रचलित माना जा सकता है।

श्रेणी शब्द व्यापारियों या शिल्पियों के संगठन का परिचायक है, परन्तु परवर्ती काल में व्यापारियों के संगठन का द्योतक निगम बन गया था। कौटिल्य ने कृषि, व्यापार और सैन्य कार्य करने वालों के सामूहिक संस्था को श्रेणी कहा है। सामान्य रूप से कौटिल्य ने इस शब्द का आशय शिल्पकारों की संस्था से भी लगाया है। मेघातिथि वेदज्ञ ब्राह्मण, वणिक, शिल्पकार आदि के संघ को 'श्रेणी' कहते हैं। कप्यट, वीरमित्रोदय विज्ञानेश्वर के अनुसार एक ही प्रकार के शिल्प अथवा व्यवसाय का अनुसरण करने वाले विभिन्न जाति के लोगों के संगठन को श्रेणी कहते हैं। नारद के अनुसार व्यवसायियों की सहकारी संस्था श्रेणी थी।

स्पष्ट है कि ''श्रेणी'' नामक संस्था में विभिन्न जाति के लोग एक ही व्यापार, शिल्प तथा उद्योग करने के लिए संगठित हो जाते थे।

श्रेणियाँ अध्यक्षों के नेतृत्व में संगठित होकर अपना कार्य करती थी। अध्यक्ष के लिए प्रमुख, जेट्ठक (ज्येष्ठक), सेठिठ (श्रेष्ठि) शब्द मिलता है। जातकों में कम्मार जेट्ठक, मालकार जेट्ठक और बड्ढकि जेट्ठक का उल्लेख मिलता है। व्यापारियों के प्रधान के लिए श्रेष्ठि (सेठ्ठि) शब्द ही अधिक लोकप्रिय था। यह पद आनुवंशिक होता था। श्रेष्ठि शब्द का उल्लेख सर्वप्रथम उत्तरवैदिक कालीन ग्रन्थों में मिलता है। मैकडानल महोदय के अनुसार सम्भवतः श्रेष्ठि शब्द श्रेणि के प्रधान का द्योतक है। श्रेष्ठि एवं सेट्ठि शब्दों में कोई मौलिक अन्तर नहीं है और दोनों ही बैंकर के सूचक हैं। बौद्ध ग्रन्थ श्रेष्ठि को उसकी सम्पन्नता के घटते क्रम में क्रमशः 'महाश्रेष्ठि', 'अनुश्रेष्ठि' एवं चुल्लश्रेष्ठि' में बाँटते हैं। छोटे–छोटे कस्बों और ग्रामों के साधारण श्रेष्ठि संभवतः 'जनपद श्रेष्ठि' कहलाते थे। गुप्तकालीन अलिलेखों में 'नगर–श्रेष्ठ' का उल्लेख मिलता है। गुप्तकालीन श्रेष्ठि व्यापार योग्य वस्तुओं का क्रय और विक्रय करने के साथ ही उत्पादन में वृद्धि के लिए पूँजी का निवेश भी करते थे। जातक कथाओं से पता चलता है कि विभिन्न प्रकार के शिल्पियों के अपने ग्राम थे शिल्पी ग्राम अपने प्रधान के नेतृत्व में संगठित थे। श्रेणियों के प्रधान को प्रायः बौद्ध साहित्य में जेट्ठक कहा गया है।

श्रेणी संगठन प्रायः गणतंन्त्रात्मक स्वरूप के होते थे तथा प्रायः प्रत्येक श्रेणी का अपना कार्यालय होता था। नारद के अनुसार कार्यालय में सदस्यों की उपस्थिति के लिए कुछ नियम निश्चित थे, जिसे राजा को मान्यता देनी पड़ती थी। ढोल या अन्य वाद्य यन्त्रों को बजाकर सदस्यों को सूचित किया जाता था कि वे निश्चित समय पर उपस्थित होकर समस्याओं पर विचार करें।'' श्रेणियाँ समय (संविदा) का पालन कर विशेष बल देती थीं। ये संविदा सम्बन्धी नियमों का कठोरतापूर्वक पालन करती थी।

प्राचीन भारत में प्रजा का स्थान , राज्य संचालन में अति महत्वपूर्ण था। प्राचीन जन–समितियॉ सदैव प्रभावी रही। किसी न किसी रूप में उनका प्रभाव बना रहा जोकि कालान्तर में भी देखने को मिलता है, यथा– पालवंश के संस्थापक गोपाल को राजपद प्रजा के माध्यम से ही प्राप्त हुआ था। यह कहना अतिशीयोक्ति न होगी की भारतीय लोकतंत्र की जड़ प्राचीन जन–समितियों तक जाती है।

सन्दर्भ

(1) कौटिल्य, अर्थशास्त्र ।

(2) डी0डी0 कौशाम्बी , द कल्चर एण्ड सिविलाईजेशन आफ ऐंशेंट इण्डिया।

(3) जनरल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल,

(4) आर0 एस0 शर्मा, प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचार एवं संस्थाएं ।

(5) एन0सी0 बंद्योपध्याय, डेवलपमेन्ट आफ हिन्दु पलिटी एण्ड पालिटिक्स थ्योरिज।

(6) के0पी0 जायसवाल, हिन्दू राजतन्त्र (हिन्दी अनुवाद)।

(7) ए0एस0 अल्तेकर, स्टेट एण्ड गर्वनमेन्ट इन ऐशेन्ट इण्डिया।

(8) हरि सहाय सिंह, प्राचीन भारत में पंचायती जन समितियॉ।

(9) वी0आर0 दीक्षितार , हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टीट्शन्स।

(10) एम0जी0 स्मिथ, पॉलिटिकल ऑर्गेनाइजेशन, 1930

(11) जे0पी0 शर्मा, रिपब्लिक इन ऐंशेंट इण्डिया।